

क्रान्तिकारी सन्त कबीर जीवन और शिक्षाएं

संसार में अनेकों किस्मों के व्यक्ति होते हैं। परिस्थितियाँ मनुष्य को जैसा बनाती हैं, वह वैसा ही बन जाता है। अनुकूल परिस्थितियों का परिणाम प्रायः अनुकूल ही होता है परन्तु कुछ व्यक्तित्व अलग किस्म के होते हैं। वे प्रतिकूल परिस्थितियों व वातावरण के बावजूद जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य-आनन्द को प्राप्त हुए तथा कह उठे-

हम न मरै मरिहै संसारा।
हम कूँ मिल्या जियावनहारा॥

अब न मरौं मरनै मन माना, तेई मुए जिनि राम न जाना।
साकत मरै सन्त जन जीवै, भरि-भरि राम रसाइन पीवै।
हरि मरिहै तो हमहूँ मरिहै, हरि न मरै हम काहे कू मरिहै।
कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा॥

सुख सागर हरि को प्राप्त करके वे निश्चिन्त नहीं बैठ गये बल्कि यह उद्घोष कर उठे-

संतौ भाई आई ग्यान् की आंधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उड़ाणी, माया रहै न बांधी रे॥
दुचिते की दोई धुनीं गिरानी, मोह बलींडा टूटा।
त्रिस्नाँ छानि परी घर ऊपरि, कुबधि का भांडा फूटा॥
जोग जुगति कर संतौ बाँधी, निरचू चुवै न पाँवी।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जाँणी।
आँधी पीछे जो जल बूटा, प्रेम हरि जन भीनाँ।
कहै कबीर भाँन के प्रगटे उदति भया तम पीनाँ॥

कबीर इस असामान्य अनुभव को कैसे प्राप्त हुए यह और भी आश्चर्यजनक है क्योंकि कबीर के जन्मदाता माता-पिता का कोई पता नहीं था। उनके जन्म स्थान के बारे में भी कोई निश्चित मत नहीं है। विद्वानों का मानना है कि काशी के निकट लहरतारा नामक स्थान पर उनका जन्म हुआ। मार्ग चलते दम्पति नीमा व नीरु की दृष्टि निकट तालाब के किनारे पड़े बालक पर पड़ी। निःसन्तान दम्पति ने बच्चे को उठा लिया और अपनी सन्तान मानकर, उसी प्रकार प्रेमपूर्वक पालन-पोषण किया।

नीमा व नीरू जुलाहे का कार्य करके अपना परिवार चलाते थे, अतः कबीर का भी पहल सम्बन्ध इसी व्यवसाय से जुड़ा और अन्त तक किसी न किसी रूप में जुड़ा रहा। धागा, चरखा, पूनी चादर आदि प्रतीकों का उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रतीकों के रूप में खूब इस्तेमाल किया है। वे कहते हैं-

चदरिया, झीनी रे झीनी,
राम नाम रस भीनी चदरिया.... झीनी रे झीनी।
अष्ट कमल का चरखा बनाया, पाँच तत्व की पूनी,
नौ-दस मास बुनन को लागे, दिन-दिन मैली कीनी।
जब मोरी चादर बन घर आयी, रंगरेज को दीनी,
ऐसी रंग रंगी रंगरे न लालो लाल कर दीनी।
चादर ओढ़ शंका मत करियो, ये दो दिन तुमको दीनी,
मूरख लोग भेद नहीं जाने, दिन-दिन मैली कीनी।
ध्रुव, प्रहलाद, सुदामा ने ओढ़ी, शुकदेव ने निर्मल कीनी,
दास कबीर ने ऐसी ओढ़ी, ज्यूँ की त्यूँ धर दीनी।

काशी मे उन दिनों छूआछूत बहुत अधिक थी। वैसे तो पूरा भारत छूआछूत की कुरीति से ग्रस्त था। परन्तु काशी तो हिन्दुओं का केन्द्र था इसलिए वहाँ यह कुरीति कहीं ज्यादा थी। जाति नीच होने के कारण कबीर किसी धर्मपुरुष के निकट भी न आ सकते थे। महात्मा रामानन्द जी, छूआछूत की भावना से पूरी तरह तो मुक्त नहीं परन्तु प्रगतिशील जरूर थे। सामाजिक दबावों के कारण वे कबीर को दीक्षा देने में विवश थे परन्तु कबीर दास जी सामान्य जिज्ञासु नहीं थे। वे किसी न किसी प्रकार ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहते थे। वे भली प्रकार जानते थे दिन के समय स्वामी रामानन्द जी से सम्पर्क कर पाना पूरी तरह से असम्भव है।

स्वामी रामानन्द जी रोज सुबह गंगा स्नान करने जाया करते थे। कबीर जी इस तथ्य को जानते थे। एक दिन रात्रि के अन्तिम पहर के बाद, सुबह होने के पहले वे गंगा तट की सीढ़ियों पर जाकर लेट गये। अंधेरा होने के कारण रामानन्द जी सीढ़ियों पर लेटे कबीर जी को देख नहीं पाये। मानव शरीर पर जैसे ही रामानन्द जी का पैर पड़ा, वे राम-राम कहते हुए पीछे हट गये। फिर कबीर को उठाकर उनकी पीठ पर हाथ फेरते हुए वे बोले, “बेटा, राम-राम कहो, तुम्हें चोट तो नहीं लगी ?” कबीर जी ने उनके पैर पकड़ लिये, और बोले, “महाराज, आपके चरण-स्पर्श से मेरा शरीर पवित्र हो गया मैं कबीर हूँ मैं अब आपका हो चुका, अब मुझे न छोड़िए।” कबीर जी के प्रेम को देखकर स्वामी रामानन्द बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कबीर जी को अपना शिष्य बना लिया।

कबीर जी पढ़े-लिखे नहीं थे, किन्तु उनका अनुभव बहुत बड़ा था। वे छूआछूत के भुक्तभोगी थे इसलिए उनकी वाणी में स्पष्टता का अंश बहुत अधिक है। कोई बुरा माने या भला, इसकी चिन्ता उन्हें नहीं थी। वे निराकार ब्रह्म के उपासक थे तथा इसके लिए कोई भी कीमत चुकाने को तैयार थे। दुनियावी कर्मकाण्ड को ऐसे तर्कों से काटते थे कि बड़े-बड़े पंडित भी तिलमिलाकर रह जाते थे लेकिन कबीर किसी की परवाह नहीं करते थे तथा कहते थे-

माला फेरत जुग भया, गया न मन का फेर,
कर का मनका डारि दे, मनका मन का फेर।
माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माहिं,
मनवा तो दस दिसि फिरे ये तो सुमिरण नाहिं।

ऐसी स्पष्ट बातों का कर्मकांडी समाज बुरा मानता था इसलिए उन पर किसी न किसी प्रकार का आक्रमण करता रहता था। कहते हैं कि एक बार किसी बुरे चलन की औरत का धन का लालच देकर कहलवा दिया कि उसका धर्म कबीर ने बिगाड़ा है।

कबीर सद्गृहस्थ थे। उनकी पत्नी का नाम लोई था। ऐसे सामाजिक कलंक से निश्चय ही कबीर की ख्याति व घरेलू जीवन प्रभावित हुआ होगा लेकिन कहते हैं कि कबीर इस सब से अप्रभावित होकर सरल भाव से उससे बोले, “यदि ऐसा है तो तुम मेरे साथ चलो और मेरे घर चलकर रहो।” उस औरत की कबीर जी की निर्धनता का पता था उसे कतई उम्मीद नहीं थी कि कबीर जी ऐसा कहेंगे। वह तो सोचती थी कि कबीर प्रतिवाद करेंगे और इस प्रकार उनकी प्रतिष्ठा धूमिल होगी। कल्याण के सन्त बाणी अंक में वर्णित है कि वह फिर भी कबीर जी के घर चली गयी, अपनी बात तो रखनी थी, पैसा जो लिया था। लेकिन कबीर जी की सद्गृहस्थी न उसे कुछ और ही बना दिया। वह बोली “मैंने लालचवश आपका अपमान किया है, मुझे माफ कीजिए।”

कबीर जी न उसे ढाँढ़स बंधाया और ब्रह्मज्ञान देकर विदा किया। कबीर जी के सरल-सहज व्यवहार के कारण दुष्टों की यह चाल कामयाब नहीं हुई और सिद्ध हो गया कि ब्रह्मज्ञानी की इज्जत की रक्षा स्वयं परमात्मा ही करता है। वे पहले की तरह स्पष्ट कहते रहे-

नाहीं धर्मी, नाहीं अधर्मी, ना मैं जती न कामी हो।
ना मैं कहता, ना मैं सुनता, ना मैं सेवक स्वामी हो।
ना मैं बंधा, ना मैं मुक्ता, ना मैं बिरत न रंगी हो।
ना काहु से न्यारा हुआ, ना काहू के संगी हो।
ना हम नरक लोक को जाते, ना हम सुर्ग सिधारे हो।

सब ही कर्म हमारा किया, हम कर्मन ते न्यारें हो।
या मत को कोई बिरलै बुझै, सो अटर हो बैटे हो।
मत कबीर काहू को थापै, मत काहू को मेटे हो।

सन्त कबीर ने सांसारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की थी परन्तु उन्होंने जो अनुभूति की, जो उन्होंने कहा उस पर आज तक अनुसंधान हो रहा है, अनेकों रिसर्च स्कॉलर उनके गूढ़ रहस्यों को उजागर करने के प्रयास में लगे हैं।

कबीर के समय में हिन्दू, जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, ईसाई व इस्लाम नामक सब धार्मिक विचारधाराएं चल रही थीं। हिन्दू व इस्लाम प्रधान धर्म थे। वैष्णव धर्म मूलतः भक्ति प्रधान है। सूफी, जो इस्लाम धर्म की एक शाखा है, भी भक्ति प्रधान है। उस समय भी उसकी उपासना पद्धति में प्रेम की प्रधानता थी। सन्तों में से किसी ने भगवान का सुगण समझा, किसी ने निगुर्ण। कबीर पर वैष्णव धर्म की शुचिता तथा सूफी मत के प्रेम, दोनों का यथेष्ट प्रभाव पड़ा।

कबीर भक्ति काल की निगुर्ण भक्ति धारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। क्योंकि उनके काव्य में पंजाबी, राजस्थानी, अवधी आदि अनेक प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों की खिचड़ी मिलती है अतः उनकी भाषा को किसी संकीर्ण घेरे में नहीं बांधा जा सकता है। किसी भाषा व धर्म की संकीर्णता में सीमित न होने के कारण जनमानस पर उनकी रचनाओं का गहरा प्रभाव पड़ा। उनके दोहे आज तक जन-प्रचलित हैं। क्या अनपढ़ क्या पढ़-लिखे, सब उनके दोहों से प्रभावित हैं। कबीर दास जी का देहान्त हुए 600 वर्ष से भी ज्यादा का समय बीत चुका है, इसके बावजूद उनके दोहे आज भी वर्तमान हैं। आज भी लोग उनके ऐसे दोहों को दोहराते दिखाई देते हैं-

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप,
जाके हिरदै साँच है, ताकि हिरदै आप।

अति का भला न बोलना, अति का भला न चूप,
अति का भला न बरसना, अति का भली न धूप।

ऐसी बानी बोलिए, जो मन का आपा खोय,
औरन को सीतल करे, आपहु सीतल होय।

ऐसे ही अनेकों दोहे हैं, जिन्हें जनसाधारण में बड़े चाव से कहा-सुना जाता है।

*You are reading this article on www.maNAVta.com - a spiritual website
We are promoting nothing but spirituality.*

उनके देहान्त के पीछे भी एक भ्रम का निवारण छिपा हुआ है। उन दिनों ऐसी चर्चा थी कि काशी में मरने पर स्वर्ग मिलता है तथा मगहर में मरने पर नर्क। कबीर साहब मानते थे कि मरने के स्थान के आधार पर स्वर्ग या नर्क का निर्धारण नहीं हो सकता बल्कि व्यक्ति के कर्म ही इसके कारण हो सकते हैं। इस भ्रम के निवारण के लिए वे अन्तिम समय से कुछ पूर्व मगहर चले गये थे। वही सन् 1495 में, लगभग 98 वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ।

सन्त कबीर की क्रान्तिकारी व्यक्तित्व सदियों तक छोटे से छोटे व्यक्ति को भी भक्ति मार्ग अपनाने की प्रेरणा देता रहेगा। वस्तुतः कबीर जनकवि के रूप में बेहद जनप्रिय हैं।

[Courtesy : Hamare Sant Mahapurush, Book by Sh. Ram Kumar Sewak Ji)

* * * * *

*Keep Visiting : www.maNAVta.com - a spiritual website
We are promoting nothing but spirituality.*